ब्रह्मविद्या

रामजीवन सिंह ।

ब्रह्मविद्या

लेखक—

रामजीवन सिंह

प्रकाशक—

बिहार थियोसौफ़िकल फ़ेडरेशन,

थियोसौफ़िकल हेडक्वार्टर्स,

पटना ४ ।

द्वितीय संस्करण] १९५२ [मूल्य ।)

दूसरे संस्करण के प्रति दो शब्द

इस पुस्तिका का प्रथम संस्करण १९३४ में हुआ और इसका हस्त-लेख उसके दस वर्ष आगे तैयार हुआ था। दूसरे संस्करण के निमित्त इस पुस्तिका को सावधानी से पढ़ने की आवश्यकता हुई। परन्तु पढ़ने पर इसमें कुछ विशेष परिवर्त्तन करने की ज़रूरत नहीं समझी गई। दो-चार पंक्तियाँ या दो-एक शब्द कहीं-कहीं जोड़ना या बदलना पड़ा है। अङ्गरेज़ी नहीं जानने वाले भाई-बहिनों को "ब्रह्मविद्या" का परिचय दिलाने के लिये यह पुस्तिका निस्सन्देह उपयोगी है।

पं० जगत नारायणजी, थियोसौफिकल सोसाइटी, बनारस, ने इस द्वितीय संस्करण की छपाई का निरीक्षण किया है। इसके लिये मैं उन-का बहुत आभारी हूँ।

रामजीवन सिंह।

३१-१२-५१
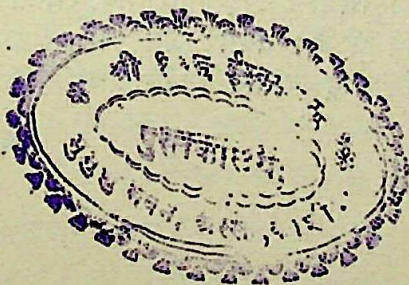
पहले संस्करण की भूमिका

"ब्रह्मविद्या क्या है"—इस बात को समझाने के लिये इस छोटी-सी पुस्तिका में चेष्टा की गई है। ब्रह्मज्ञान के मूल सिद्धान्तों का भी थोड़ा-बहुत वर्णन सीधी-सादी भाषा में किया गया है। थियोसौफ़िकल सोसाइटी की भूतपूर्व सभानेत्री, श्रीमती एनी बेसेन्ट, तथा उसके भूतपूर्व वाइस प्रेसिडेन्ट (उप-सभापति), सी० जिनराजदास, की लिखी पुस्तकों से पूरी सहायता ली गई है। मैंने केवल उनके विचारों को सरल हिन्दी भाषा में लिख कर अङ्गरेजी नहीं जानने वाले भाई-बहिनों की एक बड़ी माँग पूरी करने की चेष्टा की है। यदि इन लोगों ने थोड़ा-बहुत भी इससे लाभ उठाया तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूँगा। यह मेरी पहली रचना है। सम्भव है कि इसमें बहुत अशुद्धियाँ हो गई हों। इसके लिये मैं पाठकों से क्षमा-प्रार्थी हूँ।

ऊपर लिखे महानुभाव तथा अपने कई एक मित्रों का, जिन्होंने इस पुस्तिका को पढ़ कर, देख-सुन कर, मेरी सहायता की है, मैं आभारी हूँ।

इस हस्तलेख को लिखे आज क़रीब दस वर्ष हो गये। कई एक कारणों से यह पुस्तिका अब तक छप नहीं सकी। इस बीचमें ब्रह्मविद्या के सिद्धान्तों पर कृष्णमूर्त्तिजी के उपदेश द्वारा नयी रौशनी आई है, हमारी समझ की पुष्टि भी हुई है। तथापि जिन विचारों का इस पुस्तिका में वर्णन है, वे अपनी जगह पर सत्य हैं और आशा है कि लाभकर होंगे।

रामजीवन सिंह।

१३-४-३४ ई०

ब्रह्मविद्या

जिससे ब्रह्म का ज्ञान हो उसे "ब्रह्मविद्या" या "ब्रह्मज्ञान" कहते हैं। ब्रह्म को लोग ईश्वर, भगवान्, परमात्मा, .ख़ुदा इत्यादि अनेक नामों से पुकारते हैं। ब्रह्मविद्या का दूसरा नाम "पराविद्या" है। विद्या दो प्रकार की है: परा और अपरा। भाषा, विज्ञान, कला, संगीत, वग़ैरह, जितनी विद्याएँ हैं, जो एक मनुष्य दूसरे से सीख सकता है, उनको अपरा विद्या कहते हैं। परन्तु जिस विद्या से उस एक ब्रह्म का, उस एक ईश्वर का, ज्ञान होता है जिस ईश्वर से सब की उत्पत्ति एवं स्थिति है और जिस ज्ञान से सब ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं, वही सब से श्रेष्ठ ज्ञान है, उसी को ब्रह्मज्ञान कहते हैं, उसी का नाम परा-विद्या है।

मुण्डकोपनिषद् में ऋषि अङ्गिरस ने कहा है—"ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठाम्", "अथ परा यथा तदक्षरमधिगम्यते", अर्थात, ब्रह्मविद्या सर्व विद्या की प्रतिष्ठा या नींव है, तथा यह वह परा विद्या है जिससे 'अक्षर' या 'ब्रह्म' का अनुभव होता है। इसी ज्ञान से इस संसार की जितनी विद्याएँ हैं, जिनको अपरा-विद्या कहते हैं, उनका असल तत्त्व मालूम होता है। इसी को पश्चिम में हमारे भाई आज-कल थियोसोफ़ी कहते हैं। यह ज्ञान सनातन है, सदा से रह आया है और सदा रहेगा। यह सब धर्मों का मूल है और यह सब में पाया जाता है।

इस सृष्टि की विलक्षण कार्यवाही एक योजना या विधान (Plan) के अनुकूल चलती है। एक छोटा मकान बनाने के पहिले मनुष्य एक

सैन या नक़शा बनवाता है। तो भला, इस विश्व-व्यापी अद्भुत् लीला के अन्दर एक बड़े विधान का अस्तित्व क्यों न हो ? पहुँचे हुए महानुभाव इस लीला में ईश्वरीय विधान की पूर्त्ति देखते हैं। इस तथ्य की पुष्टि आधुनिक वैज्ञानिकों के आविष्कारों से भी होती है। ब्रह्मविद्या इस विधान की झलक देती है।

ईश्वरीय विधान उनकी ईच्छा-शक्ति का प्रतीक है। इसकी पूर्त्ति अनेक, अटल, अटूट नियमों के अनुकूल होती है। यह नियम समूह ब्रह्म-विद्या की दूसरी परिभाषा है।

ब्रह्मविद्या शक्ति का भंडार है, गंगा की धारा की तरह सरस और सुखद है। इस ज्ञान-शक्ति के कारण ही इस विश्व में अगण्य तारे, नक्षत्र, सूर्य्य तथा नाना जीव अपने-अपने स्थान पर हैं और अपनी-अपनी सत्ता की पूर्ति में लगे हैं। हमारे जीवन को सुन्दर और सुखद बनाने की कुञ्जी इसी शक्ति-संचारिणी ब्रह्मविद्या में है।

मैडम ब्लैभैट्स्की तथा थियोसौफ़िकल सोसाइटी (ब्रह्मविद्या-समाज) के अन्य नेताओं की लिखित पुस्तकों में जिस थियोसोफ़ी का उल्लेख है,वह उपरोक्त सनातन-ज्ञान, ब्रह्म-विद्या ही है। इन पुस्तकों की विशेषता यह है कि इनमें ब्रह्मविद्या के मूल-सिद्धान्तों का संकलन एक जगह कर दिया गया है और इनका विवरण इस ढंग से किया गया है कि आजकल का वैज्ञानिक संसार इनको अपना सके।

"ब्रह्म एक है और सर्व-व्यापी है"

यही ब्रह्मज्ञान का पहला सूत्र है। कंकड़, पत्थर, वनस्पति, जानवर, मनुष्य, देवता, हवा, पानी, पृथ्वी, अग्नि, सब जीवों में, सब वस्तुओं में, सब जगह, सब समय, वह ईश्वर बीज-रूप

से वर्त्तमान है। कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ वह मौजूद न हो। सारी सृष्टि उसी में है, उसी पर स्थित है। तुलसीदासजी ने रामायण में कहा है:—

जड़ चेतन जग जीव जे, सकल राममय जानि।
बन्दौं सब के पद कमल, सदा जोरि युग पानि॥
सियाराम-मय सब जग जानी।
करहुं प्रणाम जोरि युग पानी॥

गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं:—

"मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव"; अर्थात्, "डोरी में मणियों के समूह जैसे मुझ में सब गूथे हुए हैं।"

और भी,

"मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्त्तिना"; अर्थात्, "मुझसे यह दुनिया अप्रगट रूप से व्याप्त है।"

और

"अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥"

अर्थात्, "परन्तु, हे अर्जुन! इतना विस्तार-पूर्वक कहने से क्या लाभ? बस, इतना ही समझ रखो कि समूचे संसार को अपने एक अंश से रच कर और उसमें व्याप्त हो कर मैं रहता हूँ।"

सब वस्तुओं की उत्पत्ति उसी एक ईश्वर से हुई है, और सब से विलक्षण और ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि सब जीवों में ईश्वर होने की शक्ति मौजूद है, सब जीव बीज-रूप ईश्वर ही हैं, कोई किसी रूप में, किसी देह में, क्यों न हो। क्या मनुष्य, क्या जानवर, क्या

वनस्पति, सब बीज-रूप ईश्वर ही हैं। "ईश्वर-अंश जीव अविनाशी", "ममैवांशो जीव-लोके जीव-भूतः सनातनः"—ये रामायण और गीता के सार-गर्भित वचन हैं। जिस प्रकार एक छोटे-से दाने में एक विशाल वृक्ष होने की शक्ति छिपी रहती है, उसी तरह हम सब में भी ईश्वर होने की शक्ति छिपी है। ब्रह्मज्ञानी सब जगह रहने वाले उसी एक ईश्वर का अनुभव करते हैं। सदा उन्हीं की खोज में रहते हैं।

परन्तु, एक बात याद कर लेना चाहिये कि उस ब्रह्म का, जिसको हम अज्ञान-वश अपने से बाहर समझते हैं, उसका ज्ञान तब तक नहीं होगा जब तक हम अपने आप में रहने वाले उसी ईश्वर का पता न लगा लें और उसको अच्छी तरह पहिचान न लेवें। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, हर एक जीव उसी एक ईश्वर का अंश है, सभी बीज-रूप ईश्वर ही हैं। ये धीरे-धीरे उन्नति करते-करते अपनी छिपी हुई शक्तियों को, एक के बाद दूसरे को, प्रगट करते हुए आगामी अनेक कल्पों के बाद सर्व-शक्तिमान्, पूर्ण-ज्ञानी और प्रेम-मय ईश्वर हो जायँगे। इसमें कोई सन्देह नहीं।

इसलिये जो ब्रह्मज्ञानी होना चाहता है, उसको चाहिये कि पहले अपने हृदय में रहने वाले ईश्वर को पहिचाने। उसको समझना चाहिये कि वह क्षण-भङ्गुर शरीर नहीं है, वह आत्मा है, वह ईश्वर का अंश है, वह अजर है, अमर है। मौत से शरीर का नाश होता है, आत्मा का नहीं। गीता में भगवान् ने कहा है:—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

अर्थात्, यह न कभी उत्पन्न होता है, न कभी मरता है और न

उत्पन्न होकर फिर उत्पन्न होता है। यह जन्म-रहित, नित्य (ह्रास-वृद्धि-रहित), शाश्वत (सनातन) और पुराण (विकार से रहित) है। शरीर की हत्या से इसकी हत्या नहीं होती।

वियोग भी शरीर ही से होता है, आत्मा से नहीं। जितना दुःख हम लोगों को किसी के मर जाने पर होता है, उतना दुःख मरे हुए को नहीं होता। इसका कारण यह है कि हम समझते हैं कि हममें और मरे हुए आदमी में जुदाई हो गई है; परन्तु जो आदमी मर गया है वह ऐसा नहीं समझता। माँ के मर जाने पर उसके और उसके लड़के के बीच में असलियत में जुदाई नहीं होती है, क्योंकि माँ और उसका लड़का दोनों तो आत्मा ही हैं, और जीवात्माओं के बीच में वियोग होना असम्भव है। इसके समझने में कठिनाई इस बात से होती है कि लड़का इन चर्म-चक्षुओं से यह नहीं देख पाता कि उसके और उसकी माँ के बीच में जुदाई नहीं हुई है। परन्तु, जब वह गहरी नींद में रहता है और जब वह सूक्ष्म-लोकों* में वास करता है, तब उसे अपनी माँ से भेंट होती है। उसी प्रकार अन्य प्रेमियों के बीच में भी कभी जुदाई नहीं होती है। कितनी ही दूरी पर एक दूसरे से दो प्रेमी क्यों न बसे

---

* सूक्ष्म-लोक—जिन वस्तुओं से ये सूक्ष्म-लोक बने हैं, वे इतने पतले और महीन हैं कि हम उन लोकों को इन नेत्रों से नहीं देख सकते हैं। ये लोक कहीं पर आकाश में स्थित नहीं हैं। ये सभी जगह हैं, इस पृथ्वी के भीतर और बाहर। जिस प्रकार यदि एक रूई की गठरी नदी में डुबा दी जाय, तो पानी उस रूई की गठरी के भीतर समा जायगा और उसके बाहर भी रहेगा, उसी तरह सूक्ष्म-लोक, पतला और महीन होने के कारण, इस भूलोक के भीतर भी

हों, परन्तु रात में जब ये सो जाते हैं, जब इनको इस संसार का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है, जब इन दोनों की आत्माएँ सूक्ष्म लोकों में वास करती हैं, तो ये पारस्परिक भेंट और प्रेम-वार्त्तालाप का सुख प्रत्येक रात अनुभव करते हैं।

परन्तु, सुबह उठने पर जो हम लोगों को रात का अनुभव याद नहीं रहता है, इसका कारण यही है कि हमारे विचार, हमारी इच्छा हमारा हृदय जितना चाहिये उतने स्वच्छ नहीं हैं। जिन लोगों का मन और हृदय स्वच्छ और प्रेम-मय है, वे नींद में भी जगे रहते हैं; यानी, सो जाने पर सूक्ष्म-लोकों में वे जो कुछ करते हैं वह सब प्रातःकाल में उठने पर भी उन्हें याद रहता है।

दुःख इत्यादि से हमारे शरीर पीड़ित होते हैं, हम नहीं, क्योंकि हम आत्मा हैं, और आत्मा को दुःख छू तक नहीं सकता। आत्मा आनन्दमय है। वह कभी उदास या चिन्तित नहीं होती। वह "सुख-राशी" है। तुलसीदासजी ने कहा है:—"चेतन अमल सहज सुखराशी।" श्रीशङ्कराचार्य्यजी ने भी आत्मा को "सच्चिदानन्द" कहा है। इसका भावार्थ यही है कि आत्मा शक्ति, ज्ञान और आनन्द का भण्डार है।

है और बाहर भी। इन सूक्ष्म-लोकों में एक जगह से दूसरी जगह जाने में कुछ भी कठिनाई नहीं होती है, विचार करते ही हम लोग जहाँ चाहें वहाँ पहुँच जाते हैं। इसलिये जब हम लोग रात में सो जाते हैं और जब हमारी आत्मा इन सूक्ष्म-लोकों में वास करती है, तब इस भूलोक में बहुत दूर पर रहने वाले मनुष्यों से भी हम लोगों को विचार करते ही भेंट हो जाती है। इन सूक्ष्म-लोकों को प्रेत लोक, पितृ लोक, गन्धर्व लोक, स्वर्ग लोक, इत्यादि, कहते हैं।

ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसको हम नहीं कर सकते हैं, जल्दी या देर से, क्योंकि हमारे हृदय में ईश्वरीय शक्ति छिपी है। यदि हम ब्रह्मज्ञान हासिल करना चाहते हैं तो सब से पहला हमारा यही काम है कि हम यह अनुभव करें कि हम आत्मा हैं. शरीर नहीं। हमको चाहिये कि हम अपने को पहिचानें, अपने हृदय में रहने वाले ईश्वर को पहिचानें।

"भ्रातृभाव"– ब्रह्मज्ञान का दूसरा सूत्र है

सब वस्तुओं में जब एक ही ब्रह्म व्याप्त है. सब जीवों का मूल जब एक ही ईश्वर है, तो क्या जानवर, क्या मनुष्य, क्या वनस्पति, सब के-सब भाईचारे के सम्बन्ध में बँधे हैं। सम्बन्ध तो इससे भी घनिष्ट है; परन्तु, उसको प्रगट करने के लिये कोई दूसरा शब्द उपयुक्त भी नहीं है। जो सम्बन्ध हमारे शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों के बीच में है वही सम्बन्ध संसार के जीवों में है। यदि किसी तरह की कमज़ोरी या खराबी हमारे शरीर के किसी एक अङ्ग में आ जाय, तो हम जानते हैं कि उसका असर हमारे शरीर पर और उसके और अङ्गों पर किस तरह पड़ता है। जब कभी हमारे पैर में कोई घाव हो जाता है, तब हम दुबले और पीले हो जाते हैं। उसी तरह हम-आप इस संसार के जितने जीव हैं सब इन स्थूल नेत्रों से नज़र नहीं आने वाले एक ऐसे सूक्ष्म सूत्र से इस प्रकार बँधे हैं कि ऐसी कोई हानि नहीं है जो हम अपने साथ या किसी और जीव के साथ करते हों और उसका असर और दूसरे जीवों पर नहीं पड़ता हो। हम सब का सुख-दुःख एक दूसरे पर बेतरह निर्भर है। हम आप जितने काम करते हैं, चाहे ये छोटे हों या बड़े, उन सब का असर, अच्छा या बुरा, आस-पास के

जीवों पर अवश्य पड़ता है। एक उदाहरण लीजिये; एक बालक किसी अन्धे को गहरे में गिरने से बचा कर, उसका हाथ पकड़ कर उसको अपने घर पर पहुँचा देता है। देखने में तो यह काम बहुत ही छोटा है, परन्तु जिन लोगों ने उस बालक को उस काम को करते देखा है उन पर उसका असर बहुत बड़ा पड़ता है। वे सब लोक-सेवा की शिक्षा के मूल तत्त्व को आसानी से ग्रहण कर लेते हैं और अवसर आने पर उस छोटे बालक की तरह लोक-सेवा करने के लिये विशेष उत्तेजित हो जाते हैं।

यदि सच पूछिये तो उस एक ब्रह्म की दृष्टि में, जिसके ये सभी काम हैं, कोई काम न तो छोटा है, न बड़ा; सभी बराबर हैं। एक मेहतर का काम भी तुच्छ नहीं है। परन्तु याद रहे कि काम करना चाहिये दूसरे की भलाई का विचार कर के, यह ख़्याल कर कि मैं जो यह काम कर रहा हूँ वह भगवान् ही का काम है। जो काम बे-मन से, स्वार्थ-सिद्धि के लिये, किये जाते हैं, उनसे बहुत दुःख पैदा होते हैं। सच्चे और साफ़ दिल से लोक-सेवा ही का एक-मात्र विचार कर जो कुछ किया जाय उसका असर बहुत ही विलक्षण होता है। पोखर खुदवाना, मन्दिर बनवाना इत्यादि काम तो देखने में बहुत बड़े हैं और उपयोगी तो वास्तव में हैं ही, परन्तु यदि ये केवल नाम लूटने के लिये, अपने को बड़ा दिखलाने के लिये, किये गये हों, तो भगवान् की दृष्टि में इन कामों से उस बालक का काम कहीं अच्छा और उपयोगी है। पोखर और मन्दिर से लाभ तो बहुत हुआ, इसमें कोई सन्देह नहीं, परन्तु साथ ही साथ उनके बनवाने वाले के घमंड का भी तो लोगों पर बहुत बुरा असर पड़ा।

हमारे स्थूल कामों ही का कौन ज़िक्र है, हमारे विचार, भाव और वचन इन सब का भी असर उसी प्रकार पड़ता है। जो शिक्षक या माता-पिता सदा ख़ुश-दिल रहते हैं याने जिनके विचार आनन्द-मय हैं, उनके आस-पास के रहने वाले बालक और बालिकाएँ भी सदा प्रसन्न रहती हैं। इससे इनको उन्नति में बहुत लाभ पहुँचता है। उसी तरह जिस मनुष्य का मन शोक और चिन्ता से भरा हुआ है, उसका असर भी बहुत ही भयानक होता है। जो कोई उसके नज़दीक जाता है वही उदास हो जाता है। अपने विचारों का असर हमारे चरित्र पर कुछ कम नहीं पड़ता है, अच्छे का अच्छा, बुरे का बुरा। अब हम समझ सकते हैं कि हम अपने विचारों से अपनी और दूसरों की भलाई या बुराई कितनी और किस तरह कर सकते हैं। नाराज़ होकर जो माता-पिता, जो शिक्षक, अपने नौकरों को या बालकों को नीची-ऊँची बातें सुना देते हैं, उसका असर उन शिक्षक या माता-पिताओं पर, उन नौकरों या बालकों पर, या वहाँ के और लोगों पर बहुत बुरा होता है; सब के विचार और भाव में क्रोध-रूपी विष का समावेश थोड़ा-बहुत हो जाता है, सब के चरित्र कुछ-न-कुछ दूषित या कमज़ोर हो जाते हैं। साधक और सज्जन लोगों को छोड़ कर और सब की यही हालत है। इन सफल साधकों के बारे में तो तुलसीदासजी ने यों कहा है:—

> विधि-वश सुजन कुसंगति परहीं।
> फनि मणि सम निज गुण अनुसरहीं॥

अर्थात्, संयोग से यदि सज्जन पुरुष ख़राब आदमियों को संगति

में पड़ भी जायें तो जिस प्रकार सर्प अपने मणि को नहीं छोड़ता है, उसी प्रकार ये सुजन भी अपने गुण को नहीं छोड़ते।

पाठक-गण ! हम-आप अज्ञान के वश एक को दूसरे से कितना ही अलग समझें, परन्तु सच्ची बात यह है कि हम-आप सब भाईचारे की सुनहली ज़बरदस्त ज़ंजीर से अच्छी तरह बँधे हैं। हर एक क्षण हम अपने विचार, वाणी, क्रिया द्वारा अपने और आस-पास के लोगों के सुख-दुःख को, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, बढ़ाते-घटाते हैं। आज-कल संसार में जितनी अशान्ति, घृणा, द्वेष, लड़ाई, झगड़ा, फैला है, उन सब का एक-मात्र कारण यही है कि आपस के भ्रातृभाव के इस सूक्ष्म सम्बन्ध को हम लोगों ने ठीक-ठीक अनुभव नहीं किया है। हिन्दू मुसलमान को, मुसलमान हिन्दू को, भारतवासी अंगरेज़ को, अंगरेज़ हिन्दुस्तानी को, मालिक नौकर को, ज़मींदार असामी को, गुरु शिष्य को, स्त्री पुरुष को, पुरुष स्त्री को—इने-गिने मनुष्यों को छोड़ कर सब-के-सब एक दूसरे को अपने से अलग समझते हैं—सब एक दूसरे को अपने-अपने मतलब का यार समझते हैं। सब यही चाहते हैं कि हम दूसरों से थोड़ा द्रव्य ख़र्च कर अधिक-से-अधिक नफ़ा जिस तरह हो उठा लेवें, हम औरों की भलाई का तो ख्याल ज़रा भी नहीं करते, सदा स्वार्थ-साधन ही के चक्कर में लगे रहते हैं। हम यह नहीं समझते हैं कि हमारी भलाई सब की भलाई पर निर्भर है। जितने जीव हैं सब उस ईश्वर ही के अंग हैं, एक दूसरे पर निर्भर हैं और जिसमें सब की भलाई है उसी में किसी ख़ास जीव की भी भलाई है।

आज हम इस बात को, ब्रह्मज्ञान का जो यह भ्रातृभाव का दूसरा बड़े मार्के का सूत्र है, उसको नहीं पहिचानते हैं; परन्तु कुछ रोज़ के

बाद इसको हम अवश्य अनुभव करेंगे और सारी पृथ्वी पर भ्रातृभाव के पूर्ण अनुभव होने के कारण शान्ति फैल जायगी। क्योंकि, दुःख और काल (समय) हमारे बड़े जबरदस्त शिक्षक हैं। यदि हम आसानी से, अपनी समझदारी से, अपने दैनिक जीवन में भाईचारे का वर्ताव करना नहीं सीख लेते हैं, तो वही शिक्षा हमको ऊपर लिखे, दो कठोर शिक्षकों की मातहती में अवश्य सीखनी पड़ेगी। स्त्री-पुरुष आपस में लड़-झगड़ कर, एक दूसरे से रूठ कर के ही अपनी एकता का अनुभव करते हैं। इसी तरह से दुनियाँ सीखती आई है और सीखेगी। संसार में लड़ाई-झगड़ा घर में या बाहर जहाँ कहीं होता है उसका मतलब यही है कि भगवान् की यह इच्छा है कि वहाँ पर लोग एक दूसरे को भाई-भाई समझें और भाई-भाई जैसा वर्ताव करें। जितना और जितना शीघ्र मनुष्य इस भ्रातृभाव के सम्बन्ध को अपने दैनिक जीवन में अनुभव करने लगेंगे; उतना और उतनाही शीघ्र संसार का दुःख दूर होगा। नेता जो सर्व-साधारण मनुष्यों के आगे-आगे चल कर उनको परमार्थ की राह बतलाते हुए, ख़ुद तकलीफ़ और झंझट को झेल कर उस राह को सुगम बना कर, उनको दुःख के बन्धन से छुड़ाना चाहते हैं, वे अग्रगामी अपनी बुद्धि से भ्रातृभाव की सचाई को समझ कर सदा भाईचारे का वर्ताव सब के साथ करते रहते हैं। वे इस शिक्षा को ग्रहण करने के लिये दुःख और काल नामक शिक्षकों पर भरोसा नहीं करते, परन्तु वे अपने हृदय में रहने वाले ईश्वरीय शक्ति ही में विश्वास करते हैं।

प्यारे पाठक! हमें या आपको भाईचारे का सम्बन्ध क़ायम करना नहीं है। ब्रह्मज्ञान तो यही बताता है कि यह सम्बन्ध क़ायम है

ही। हमारा-आपका काम केवल इतना ही है कि हम अपने दैनिक जीवन में प्रति-क्षण इस भ्रातृभाव का अनुभव करें। हमारे नेत्रों के सामने कई एक पर्दे लगे हुए हैं जिनसे भ्रातृभाव का अनुभव करना कठिन हो जाता है। हम काले, ये गोरे; हम ब्राह्मण, ये शूद्र; हम मर्द, ये औरत; हम अक़्लमन्द, ये मूर्ख; हम पढ़े-लिखे, ये निपढ़; हम धनी, ये ग़रीब; हम मज़बूत, ये कमज़ोर; हम हिन्दू, ये मुसलमान; हम भारत-वासी, ये अङ्गरेज़;—इस तरह के जो नाना प्रकार के विचार हमारे मन में उठते हैं और जिनके कारण संसार में भ्रातृभाव की इतनी कमी है, उन सब का कारण यही है कि हमारे सामने जाति, रंग, रूप, धन, विद्या, धर्म, जातीयता इत्यादि के पर्दे लगे हैं; उनके भीतर जो भ्रातृभाव की कार्य्यवाही है उसको हम नहीं देखते। यदि हम यह अच्छी तरह समझ लें कि हम सबों की उत्पत्ति एक ही ईश्वर से है और हमारी स्थिति भी उसी एक ईश्वर में है और हम सब में वही एक ब्रह्म वर्तमान है तो ऊपर लिखे नाना तरह के पर्दे जो हमारे ज्ञानचक्षु के आगे लगे हुए हैं धीरे-धीरे उठ जायेंगे और हम भ्रातृभाव का मधुर रस पान करने लगेंगे। जो मनुष्य चाहता है कि हम ब्रह्मज्ञानी बनें, हम अपने ईश्वरत्व को पहिचानें, तो वह भ्रातृभाव के इस मंत्र को ग्रहण करे, दिन-रात इसीका मनन करता रहे, प्रति-क्षण सब जीवों के साथ, क्या मनुष्य, क्या जानवर, भाईचारे का बर्ताव करे। अपने से छोटों के साथ और जो अपने साथ मुनासिब तौर से पेश नहीं आते हैं उनके साथ अधिकतर मनुष्य अपने इस कर्त्तव्य को भूल जाते हैं, परन्तु ऐसा नहीं चाहिये। भ्रातृभाव की जंजीर में सभी जकड़े हैं, कोई छुटे हुए नहीं हैं। इसमें एक भी अपवाद नहीं है।

ब्रह्मज्ञान हमें यह भी बतलाता है कि सब धर्मों का मूल एक ही है।

और वास्तव में ऐसा ही होना भी चाहिये। जब सब जीवों का पिता एक ही ईश्वर है, तब सांसारिक सब ज्ञानों का, सब धर्मों का, मूल भी एक ही होना चाहिये। और यथार्थ में है भी ऐसा ही। इसको अच्छी तरह समझने के लिये पहिले इस बात का समझना बहुत ज़रूरी है कि इस दुनियाँ की सच्ची देखभाल, वास्तव में, राजा, गवर्नर, पार्लियामेन्ट द्वारा नहीं, बल्कि देवताओं और ऋषिओं द्वारा होती है, यों तो सब की निगरानी वही ईश्वर करता है जिसकी गोद में हम पल रहे हैं। परन्तु उस एक ब्रह्म के नीचे करोड़ों देवतागण और ऋषिगण हैं जो उसके सहायक हो कर इस सृष्टि के भिन्न-भिन्न कामों को करते हैं। इसमें परमात्मा की कुछ कमज़ोरी नहीं झलकती है, उल्टे यह बात उसकी बुद्धि, प्रेम और पूर्णता का परिचय देती है। यदि हमारे और उस एक ईश्वर के बीच ये देव और ऋषिगण नहीं होते तो हम किस तरह समझ सकते थे कि हम आप सभी प्राणी उन्नति करते-करते एक-न-एक दिन अपने पिता के सदृश ज्ञानी, प्रेम-मय और क्रियाशील हो जायंगे। और यदि ये नहीं होते तो उस परम-पद को प्राप्त करने के लिये रास्ता कौन बतलाता? जब हम इन ऋषिओं की ओर देखते हैं और यह विचार करते हैं कि ये भी एक समय हमारे सदृश नाना अवगुणों से युक्त मनुष्य-योनि में थे और अपने ईश्वरत्व को पहिचान कर, सब जीवों में उस एक ब्रह्म को देखते हुए और सबों की भलाई दिन-रात करते हुए आज इस परम पद को प्राप्त कर गये हैं, तब हमको भी उनके दिखलाये रास्ते पर चलने के लिये विशेष उत्तेजना होती है। हिन्दू-शास्त्र-पुराणों के पढ़ने से भी यही पता चलता है कि संसार की देखभाल इन्हीं "पहुँचे

हुए" महात्माओं द्वारा होती है। इन लोगों के समाज को "ऋषि-संघ" या "श्वेत महामठ" कहते हैं। हमारी सरकार के जिस प्रकार ख़ास-ख़ास कामों के करने के लिये ख़ास-ख़ास अधिकारी नियुक्त हैं, उसी प्रकार उस ऋषि-संघ में भी ख़ास-ख़ास कामों की देखभाल ख़ास-ख़ास महात्माओं के हाथ में है। ये सब उसी एक ईश्वर के कर्मचारी हैं, इन्होंने अपनी इच्छा को उनकी एक इच्छा में भुला दिया है और ये दिन-रात बिना आराम के, उस परमात्मा की इच्छा को पूरी करने में, मनुष्य-मात्र की भलाई के भिन्न-भिन्न कामों में लगे रहते हैं। इन लोगों का विशेष वर्णन तो एक दूसरे लेख में किया जायगा; यहाँ पर केवल इस लेख के समझने ही के लिये थोड़ा-बहुत इनका वर्णन किया जाता है।

कई एक हज़ार वर्षों का एक मन्वन्तर होता है। हर एक मन्वन्तर में एक-एक मनु राज करते हैं। आज-कल आर्य जाति के मनु भगवान् वैवश्वत हैं। इनके हाथ में संसार के शासन का भार है; इस पृथ्वी के राजा जो भगवान् सनत्कुमार हैं, उनके ये मनु महाराज मानो वाइसराय या प्रतिनिधि हैं। कभी-कभी पृथ्वी का कोई टुकड़ा पानी के नीचे चला जाता है, कभी-कभी ज़मीन का कोई हिस्सा जल के भीतर से बाहर निकल कर टापू बन जाता है, एक जाति की आज विजय होती है दूसरे की हार, कहीं पर एक दूसरे से सन्धि होती है, इन सबों की देख-भाल इन्हीं मनु महाराज के हाथ में है।

जैसे शासन के काम के लिये एक मनु होते हैं, उसी प्रकार हर एक समय में एक-एक जगद्गुरु * भी होते हैं। इनके हाथ में संसार की

* एक समय में संसार में कई मूल जातियों के अध्यक्ष कई मनु हो सकते हैं, पर एक समय में जगद्गुरु केवल एक ही होते हैं।

शिक्षा का भार है। आज-कल के जगद्गुरु "मैत्रेय ऋषि" हैं। यही समय-समय पर आवश्यकतानुसार ख़ुद आकर या अपने किसी एक शिष्य को भेज कर नाना धर्मों की स्थापना या सुधार करते हैं। उपरोक्त "ऋषि-संघ" ही के हाथ में सम्पूर्ण और सच्चा ज्ञान है, जिसको ब्रह्म-विद्या कहते हैं। इस ऋषि-संघ के महात्माओं ने बड़े परिश्रम से, बहुत तपस्या से, कई एक युगों के अध्ययन और अन्वेषण से, इस ब्रह्मज्ञान को प्राप्त किया है। दिनों-दिन जिस प्रकार महात्माओं की संख्या बढ़ती जाती है और इस ऋषि-संघ के सदस्य † बढ़ते जाते हैं उसी प्रकार उनके विशेष अध्ययन और अन्वेषण से यह ब्रह्मज्ञान और भी पुष्ट होता जाता है और इसकी सत्यता और भी सिद्ध होती जाती है। इस ब्रह्मज्ञान-प्रचार-विभाग के अध्यक्ष इस समय "जगद्गुरु मैत्रेय" हैं।

"जगद्गुरु" किसी विशेष समय में मनुष्य-मात्र को उस ब्रह्मज्ञान का वही हिस्सा देते हैं जिसको वे अच्छी तरह समझ सकें, जो उनकी उन्नति के लिये जरूरी हो। हम-आप भी सब को सब समय सब बातें नहीं कहते हैं। शिक्षा देश, काल और पात्र के अनुसार ही दी जाती है। जब-जब जैसी जरूरत पड़ी है, तब-तब उसी के अनुसार नाना धर्मों की स्थापना हुई है। आज-कल संसार में जितने बड़े-बड़े धर्म और धर्म-समाज नज़र आते हैं, उनकी उत्पत्ति इसी प्रकार हुई है और इसका कारण भी यही है।

एक धर्म दूसरे से अच्छा नहीं है। सब अपनी-अपनी जगह पर अच्छे

† ऋषि-संघ के सदस्य वे ही लोग होते हैं जो ईश्वरेच्छा को अपनी इच्छा समझ कर तदनुसार चलने के लिये स्वभावत: कटिबद्ध हो गये हैं और जिनने श्वेत महामठ की पहली दीक्षा प्राप्त कर ली है।

हैं। जो विभिन्नता एक दूसरे धर्म के बीच दिखलाई पड़ती है, वह देश, काल और पात्र की विभिन्नता के कारण है और यह विभिन्नता बिलकुल बाहरी है। विभेद धर्म के रूप-रंगों में पूजा-ध्यान इत्यादि की विधियों में है, असलियत में नहीं, धर्मों की मूल बातों में नहीं। धर्मों के रूप-रंग में, आचार में, विधि में जो विभिन्नता है, यह जिस समय में इन धर्मों की उत्पत्ति हुई, उस समय के जैसे मनुष्य थे, जैसी ज़रूरत थी,—इन्हीं सब के कारण हुई। ये धर्मों की बाहरी दिखावटें भी विचार कर देखने से बहुत जगह पर एक दूसरे से मिलती-जुलती मालूम पड़ती हैं। पाठक एक बात न भूलेंगे कि धर्मों के रूप-रंग, आचार, विधि-विधान इत्यादि जैसा कि हम आज देखते हैं, उनमें बहुतों की तो समय के बदल जाने से आज जरूरत नहीं है और जो कुछ काम के लायक है भी उनमें बहुत जगह पर मनुष्य ने अपनी अज्ञानता से, मूढ़-विश्वास से, बहुत-सा उलट-फेर कर दिया है। धर्म के जो मूल तत्त्व हैं, जो सदा एकसाँ रहते हैं, वे सब धर्मों में पाये जाते हैं; किसी में किसी विशेष तत्त्व पर विशेष जोर दिया गया है, किसी में कुछ कम, किसी में कोई बात इशारतन् कह दी गई है जिसका दूसरे में सविस्तार वर्णन है किसी में उसके पूर्व-स्थापित धर्मों के मूल-तत्त्व मान लिये गये हैं भिन्न-भिन्न धर्मों के बीच मूल सिद्धान्तों को लेकर किसी प्रकार का मत-भेद या शत्रुता नहीं है। सब जीवों पर दया करना, सत्य बोलना, सब से प्रेम करना इत्यादि जो आचार की मूल बातें हैं इन सब का जिक्र सब धर्मों में है। इन सब बातों पर सब धर्म एकमत हैं, कहीं पर मत-भेद नहीं है। यह ठीक है कि हिन्दू-धर्म में ईश्वर के सर्व-व्यापक होने और मनुष्य की एकता पर; ईसाई मजहब में जीवात्मा की व्यक्तिग

उन्नति पर; मुसलमानों के मजहब में भ्रातृभाव, साहस और निर्भीकता पर; पारसी धर्म में पवित्रता पर; बौद्ध-धर्म में दया और अहिंसा पर; विशेष ज़ोर दिया गया है; तो क्या और सब बातें जो एक धर्म में हैं वे दूसरे में नहीं हैं ? हैं ज़रूर, परन्तु जैसा ऊपर कहा गया है—किसी में कोई बात विशेष प्रगट है, किसी में कुछ कम। ईसाई धर्म में पुनर्जन्म पर उतना ज़ोर नहीं दिया गया है जितना कि हिन्दू धर्म में, लेकिन इसके बारे में कई जगह संकेत कर दिया गया है अवश्य। जिस समय में जिस गुण को ग्रहण करने की विशेष ज़रूरत थी उस पर विशेष ज़ोर दिया गया है—बात सीधी इतनी ही है। हम-आप एक धर्म को दूसरे से अलग भले ही समझें, परन्तु जगद्गुरु ऐसा नहीं समझते, उनकी नज़र में सब बराबर हैं, सब अपनी-अपनी जगह पर उपयोगी हैं। ये धर्म सब मानो भिन्न-भिन्न स्कूल हैं जिनमें जीव आवागमन के द्वारा ख़ास-ख़ास गुणों को ग्रहण कर के पूर्ण होने की चेष्टा करता है।

जिस प्रकार सबकी उत्पत्ति एक ही स्थान से हुई है, क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या अङ्गरेज़, सब उस एक ईश्वर के पुत्र हैं, सब उसकी नज़र में बराबर हैं, ठीक उसी प्रकार सब धर्म-सम्प्रदाय भी उसी एक श्वेत-महामठ से निकले हैं; जगद्गुरु की दृष्टि में सब धर्म अच्छे हैं, सब धर्म वास्तव में एक ही हैं। और यदि, पाठक ! आप ग़ौर से विचारें तो मालूम होगा कि धर्म एक ही है, दो नहीं। सनातन-धर्म, बौद्ध-धर्म, इसलाम धर्म, ईसाई धर्म इत्यादि संसार में जितने धर्म-सम्प्रदाय हैं सब उस एक-धर्म के नाना रूप हैं। उसी एक-धर्म को ब्रह्मविद्या कहते हैं। उस ब्रह्मविद्या के जितने मूल सिद्धान्त हैं सब थोड़ा-बहुत स्पष्ट रूप से सब धर्मों में पाये जाते हैं। सब धर्म-सम्प्रदायों से जितना सीखना

चाहिये उतना जब जीव सीख लेता है तब उसको एक ही धर्म सूझ पड़ता है, उसी समय उसको ब्रह्मविद्या का पूरा-पूरा ज्ञान होता है। ऐसे मनुष्य दिन -रात लोक-सेवा में लगे रहते हैं, उनमें स्वार्थ-परता का लेश-मात्र भी नहीं रहता।

यदि लोग ब्रह्मज्ञान के इस शान्तिमय सन्देश को अच्छी तरह समझ लें, तो धर्म के कारण आज जो घृणा और द्वेष के प्रवाह बह रहे हैं; झगड़ा, बलवा, हत्या, अनबन के समाचारों से पत्र-पत्रिकाएँ जो भरी रहती हैं; वे सब बिलकुल बन्द हो जायँ और, इतना ही नहीं, आगे के लिये ये सब असम्भव भी हो जायँ, सर्वत्र प्रेम-राज्य फैल जाय, प्रेम-वायु के बहने से पाप-रूपी बादलों का नाश हो जाय, अँधियाली जाती रहे, शान्ति-रूपी चाँदनी सोलहों कला के साथ छिटक पड़े।

हिन्दू और मुसलमान को, भारतवासी और अङ्गरेज़ को, यदि कोई मिला सकता है तो वह ब्रह्मज्ञान ही है। यह चाहे तो इन दोनों को प्रेम की जंजीर में इस प्रकार जकड़ दे कि फिर उनका अलग होना असम्भव हो जाय। हिन्दू और मुसलमान जब तक यह अच्छी तरह न समझ लें कि एक ही ख़ुदा उन दोनों में है—"एको देवः सर्वभूतेषु गूढः" अर्थात् एक ही ईश्वर सब जीवों में छिपा है, और उन दोनों के मज़हब का मूल भी एक ही है, कोई धर्म किसी से बड़ा या छोटा नहीं है, सब अपनी-अपनी जगह पर अच्छे हैं, तब तक इन दोनों जातियों में मेल होना असम्भव है। हिन्दू को हिन्दू-धर्म, मुसलमान को इसलाम, सब जाति को अपना-अपना धर्म प्यारा है और यह सराहनीय भी है। परन्तु इस प्रेम का मतलब यह नहीं है कि एक जाति दूसरी जाति के धर्म को घृणा की नज़र से देखे। भगवान् के निकट जाने के लिये कई

एक मार्ग हैं। किसी को एक रास्ता पसन्द है, किसी को दूसरा। भक्त जिस रास्ते से उस ईश्वर को पाने की पूरी चेष्टा करता है, भगवान् उसको उसी रास्ते पर अवश्य दर्शन देते हैं। संसार में जितने मज़हब हैं सब मानो ईश्वर के निकट पहुँचने के लिये भिन्न-भिन्न विचार वाले मनुष्यों के लिये भिन्न-भिन्न सड़कें हैं। सब धर्मों द्वारा मनुष्य ईश्वर को पा सकता है। किसी को अपना मज़हब छोड़ कर दूसरी जाति के मज़हब को ग्रहण करने की कोई ज़रूरत नहीं है। सब को अपने-अपने धर्म पर डटे रहना चाहिये; परन्तु साथ ही साथ उनको एक बात नहीं भूलनी चाहिये कि संसार में भिन्न-भिन्न स्वभाव के, भिन्न-भिन्न विचार के, हज़ारों मनुष्य हैं, एक आदमी का जो ख़ुराक है वह दूसरे के लिये ज़हर है, एक आदमी को जो बात पसन्द है वह दूसरे को नापसन्द है, हिन्दू मन्दिर में जा कर घड़ी-घंटा, शंख इत्यादि से भगवान् की पूजा करते हैं, तो मुसलमान मसजिद में जाकर ख़ुदा का ख़्याल करते हैं। इसमें हर्ज ही क्या है? जिसको जो अच्छा लगता है वह करता है। भगवान् कृष्ण ने कहा है कि—

ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

अर्थात्, हे अर्जुन! जो जिस तरह मेरे पास पहुँचते हैं, उनका सत्कार मैं उसी प्रकार करता हूँ, क्योंकि चारों ओर से मनुष्य मेरे ही मार्ग पर चलते हैं।

ब्रह्मज्ञान हमें यह भी बतलाता है कि ईश्वर के कई एक बड़े-बड़े नियम हैं जिनके अच्छी तरह समझने और तदनुसार चलने ही पर हमारी, आपकी, सबकी उन्नति निर्भर है। ये प्रकृति के नियम हैं। इनमें से मुख्य दो हैं—पुनर्जन्म और कर्म।

पुनर्जन्म

यह पहले कहा जा चुका है कि हर एक जीव बीज-रूप ईश्वर है और उसको एक दिन सर्व-शक्तिमान् ईश्वर होना है। क्या यह एक जन्म में सम्भव है? कदापि नहीं। एक जन्म में यदि जीव एक गुण भी अच्छी तरह सीख ले तो बहुत है। किसी से घृणा नहीं करना—इसी एक गुण को लीजिये, औरों का क्या ज़िक्र है! पाठक! आप स्वयं अपने हृदय से पूछें कि क्या आप इस गुण को एक जन्म में अच्छी तरह ग्रहण कर सकते हैं। आपको अवश्य ही सन्देह-युक्त जवाब मिलेगा। ग्रहण करने का मतलब उस गुण को केवल तोता के ऐसा रट लेने से नहीं है और न केवल उसका मतलब ही समझ लेने से है, परन्तु उसके अनुसार जीवन व्यतीत करने से, सदा सब से हिलमिल कर शान्ति-पूर्ण और प्रेम-मय हो रहने से है। जब जीव का ध्येय सब गुणों से सम्पन्न, अनन्त, प्रेमशील ईश्वर होना है, तो यह क्या एक जन्म में हो सकता है? कभी नहीं। इसके लिये जीव को इस संसार में बार-बार जन्म लेना बहुत जरूरी है। जन्म और मरण के चक्कर में आये बिना जीव की गुप्त ईश्वरीय शक्तियाँ कैसे उभर सकती हैं, यह जीव अनुभव और ज्ञान कैसे हासिल कर सकता है? कार्य-क्षेत्र तो यही संसार है। यह संसार दुःखमय है ठीक, परन्तु यहाँ ही दुःख-सुखों का अनुभव करते हुए, नाना तरह के ज्ञान को हासिल करते हुए, अच्छा और बुरा, सत् (रहने वाला) और असत् (नाश होने वाला) का विचार करते हुए ही जीव एक दिन ईश्वरत्व को पा सकता है।

एक जन्म ही से दुःखी, दूसरा जन्म ही से सुखी; किसी घर में एक भाई सर्वस्व-त्यागी और लोक-सेवक, दूसरा स्वार्थी और दुराचारी; किसी का जन्म राजा के महल में, तो दूसरे का एक कंगाल की झोपड़ी में; इत्यादि तरह-तरह के गोलमाल जो नज़र आते हैं और जिन्हें लोग "नटवर-लला की लीला" कह कर टाल देते हैं, इन सब को पुनर्जन्म द्वारा ब्रह्मज्ञान बड़ी ख़ूबी के साथ हल करता है। इसको एक बार समझ लेने पर, सर्वत्र न्याय और नियम ही दीख पड़ते हैं। यह विषय बहुत बड़ा है। इसको अच्छी तरह समझने के लिये एक दूसरे लेख की ज़रूरत है।

भारतवर्ष में यद्यपि हमारे हिन्दू-धर्मावलम्बी पुनर्जन्म और कर्म के नियमों से ख़ूब परिचित हैं, तथापि यहाँ पर कई एक बातें जो हम पुनर्जन्म के नियम से सीखते हैं, उनको कह देना व्यर्थ नहीं होगा। जीव न तो औरत है, न मर्द; न हिन्दू, न मुसलमान। कितने लोगों का विश्वास है कि जो मर्द है, वह बराबर मर्द ही रहेगा, वह औरत कभी नहीं होगा; जो हिन्दू है, वह बराबर हिंदू ही रहेगा, वह मुसलमान या अङ्गरेज़ कभी नहीं होगा; जिसका जन्म आज भारतवर्ष में हुआ है, उसका जन्म भविष्य में बराबर भारतवर्ष ही में हुआ करेगा, इङ्गलैण्ड या अमेरिका में नहीं—यह सब एकदम भूल है। जीव ख़ास-ख़ास अनुभवों को प्राप्त करने के लिये, ख़ास-ख़ास गुणों को ग्रहण करने के लिये, कभी मर्द का, कभी औरत का, शरीर धारण करता है; कभी भारतवर्ष में, कभी जापान में, कभी अमेरिका में, जगह-जगह पर जन्म लेता है। पुनर्जन्म के नियम का विशेष अध्ययन करने से हमें यह भी पता चलता है कि जब कोई जीव किसी घर में जन्म लेता है, तो

उसके माँ-बाप को चाहिये कि वे अपने बालक को खेलौना नहीं समझ कर, उसको जीवात्मा समझ कर उसकी इज्ज़त करें तथा उसकी तोतली बोली का, उसके विचारों का, मन के उमंगों का, ख़याल करें और उसकी मदद करें ताकि वह अपना उद्देश्य पूरा सके; उसने जिस काम को करने के लिये इस संसार में जन्म लिया है वह पूरा हो सके। जन्म लिये हुए जीवात्माओं का आदर करना बहुत ज़रूरी है; हो सकता है कि वे माँ-बाप से भी बढ़ कर ज्ञानी और उन्नत हों। पुनर्जन्म से हमारा विचार, हमारे बच्चों की ओर, अपने नौकर, स्त्री तथा और सब लोगों के प्रति, बिलकुल ही बदल जाता है। अज्ञान का जो पर्दा हमारे नेत्र के सामने लगा था वह उठ जाता है, सब मनुष्य अपने स्वाभाविक, असल रंग-रूप में नज़र आने लगते हैं, और शान्ति और प्रेम धीरे-धीरे चारों ओर फैलने लगते हैं।

परन्तु कर्म के नियम को समझे बिना पुनर्जन्म से यह ईश्वर की लीला आधी ही समझ में आती है। संसार में पूर्ण न्याय और नियम का राज्य है, अन्याय का नहीं; इसकी देख-भाल एक बड़े न्यायी ईश्वर और उनके कर्मचारियों द्वारा होती है, न कि यह संसार बे-माँ-बाँप के बिना किसी उद्देश्य या मतलब के, काल-रूपी नदी में बहा चला जाता है—इन सब बातों को समझने के लिये पुनर्जन्म के साथ ही साथ कर्म के नियम को भी समझना बहुत ज़रूरी है।

कर्म का नियम

यही है कि हम जैसा करते हैं वैसा पाते हैं। धान बोने से धान ही पैदा होता है, काँटे नहीं; बबूल बोने से बबूल ही पैदा होगा, गेहूँ नहीं।

जैसा बोओगे, वैसा काटोगे। हम जैसा कर्म करते हैं वैसा ही फल भोगते हैं, अच्छे का अच्छा, बुरे का बुरा। कितने लोगों का ख़्याल है कि हम लोगों का सुख-दुःख ईश्वर की ख़ुशी पर, उसकी रज़ामन्दी पर निर्भर है, वह जिनके कामों से प्रसन्न होता है उनको सुख-रूप। पुरस्कार देता है और जिनके कामों से वह अप्रसन्न होता है उन्हें दुःख-रूपी दण्ड देकर उनकी मरम्मत करता है। यह विचार एकदम ग़लत, अयुक्ति-संगत, और विशेष हानिकारक है। ऐसे-ऐसे विचारों से तो ईश्वर के ईश्वरत्व में भी धव्वा लगता है, वह मनमौजी, अन्यायी-सा प्रतीत होता है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। हम को न तो कोई दण्ड देता है, न इनाम। ईश्वर न तो हमारे काम से ख़ुश ही होते हैं, न रंज, क्योंकि उनकी दृष्टि में सभी काम बराबर हैं; क्योंकि काम कोई भी क्यों न हो, अच्छा या बुरा, जीव उससे कुछ सीखता ही है। ईश्वर की नज़र में पाप-पुण्य, अच्छा-बुरा, कोई चीज़ नहीं है। परन्तु हम लोगों के लिये इस बात का विवेक करना कि कौन काम अच्छा है, कौन बुरा, तब तक बहुत ज़रूरी है, जब तक कि हम भी ईश्वर के ऐसा पूर्ण और सिद्ध न हो जायँ।

ईश्वर की एक योजना है जिसके फल-स्वरूप यह सृष्टि है और जिसको "विकास" या "क्रमोन्नति" कहते हैं। इसका अर्थ सारांश में यही है कि जीव जो बीज-स्वरूप ईश्वर है उसकी उन्नति खनिज, वनस्पति, जानवर, मनुष्य इत्यादि योनि हो कर अवश्य होनी है। जिस प्रकार जो जन्मा है वह एक-न-एक दिन अवश्य मरेगा, उसी प्रकार हर-एक जीव का ईश्वर होना भी निश्चित है। एक बात और है कि जिस योनि में जीव मौजूद है उसके नीचे वाली योनि में वह कदापि नहीं गिर

सकता। जैसे जो जीव कंकड़, पत्थर, वनस्पति, जानवर योनि हो कर मनुष्य योनि में आ पहुँचा है, वह जानवर कभी नहीं हो सकता है। यह ख्याल करना कि हम भविष्य में गदहा या घोड़ा हो जायँगे, यह निरा मिथ्या विचार है*। ईश्वर की जो योजना है वह कई एक नियमों के अनुसार चलती है, उनमें से पुनर्जन्म और कर्म मुख्य हैं। अच्छा काम वही है जो ऊपर लिखे ईश्वर की योजना के अनुकूल हो, जिससे जीव की उन्नति हो, उसका विकास हो। जिस काम से जीव की उन्नति में, मनुष्य-मात्र की भलाई में, ईश्वर की योजना की सिद्धि में, बाधा पहुँचती हो, वह काम बुरा है।

हम सब अपने-अपने कर्मों के फल भोगते हैं। इस जन्म में जो हम सुख-दुःख अनुभव करते हैं, वह हमारे पिछले किये हुए कामों के फल हैं, चाहे वे इसी जन्म में किये गये हों या पूर्व जन्मों में या हो सकता है कि कुछ-कुछ दोनों जन्मों में किये गये हों, परन्तु हैं हमारे ही किये हुए कामों के फल। किसी ने ज़बरदस्ती हमारे सर पर सुख-दुःख का बोझ नहीं लाद दिया है। इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। इसके समझ लेने पर बहुत सा समय जो सोच और चिन्ता

---

* यह हो सकता है कि हम किसी कारण से मनुष्य योनि से पशु या वनस्पति योनि में थोड़े काल के लिये गिर जायँ; परन्तु यह ख़्याल करना कि हमलोगों को बराबर उसी पशु या वनस्पति योनि में रहना पड़ेगा अथवा फिर क्रमशः ऊपर चढ़ना पड़ेगा, यह एकदम भूल है। इससे न उस व्यक्तिगत जीव को लाभ है, न इससे ईश्वर की इच्छा ही पूरी होती है। समय बीत जाने पर जीव फिर अपनी योनि में चला आता है। परन्तु जीव का एक योनि से किसी दूसरी नीचे वाली योनि में गिरना ऐसी घटना बहुत ही कम होती है।

में व्यर्थ बीतता है वह चैन से, किसी उपयोगी काम के करने में कटेगा। संसार के दुःख का भार बहुत कुछ हलका हो जायगा। माँ पुत्र के मर जाने पर, व्यापारी धन के डूब जाने पर, विद्यार्थी जाँच में फेल हो जाने पर, जो मारे चिन्ता के व्याकुल हो जाते हैं, जिनके लिये यह संसार नीरस, अन्धकार-मय हो जाता है, जो कहीं-कहीं पर आत्मघात करने के लिये उद्यत होते देखे गये हैं, यदि वे लोग पुनर्जन्म और कर्म के नियमों को अच्छी तरह समझ लें, तो पूर्णमासी की चाँदनी रात की तरह उन सबों का जीवन उजियाला और शान्तिमय हो जाय।

पाठक! अब आप बहुत-कुछ समझ गये होंगे कि ब्रह्मविद्या क्या है। ब्रह्मज्ञान सनातन ज्ञान है। इससे हम उस एक ईश्वर को जो सब में है पहिचान सकते हैं; उसकी लीला को समझ सकते हैं। ब्रह्मज्ञान से यदि हम चाहें तो इस दुःखमय संसार को स्वर्ग-सा आनन्द-मय, शान्ति-पूर्ण बना सकते हैं। ब्रह्मज्ञान से बढ़ कर और कोई ज्ञान नहीं है। इसके जान लेने पर और किसी बात के जानने की जरूरत नहीं रहती। ब्रह्मज्ञान से हमारे जितने भ्रम हैं सब दूर हो जाते हैं। सब जगह न्याय ही न्याय, नियम ही नियम, उस दयालु परमात्मा का प्रेम ही प्रेम नज़र आने लगता है। किसी प्रकार का भय भी नहीं रहता। दुःख की सब कड़ुआई जाती रहती। कहा है—

विपति नहीं यह रघुपति दाया। कष्ट भोगाय छोड़ावत माया॥

और माया का विश्लेषण—

मैं अरु मोर तोर तैं माया। यहि वश भयऊ जीव निकाया॥

ब्रह्म-ज्ञानी का जीवन बड़ा ही आनन्दमय बीतता है। वह सब के साथ भाईचारे का बर्ताव करता है, सब में उसी एक ईश्वर को पहि-

चानने को चेष्टा करता है। क्या शत्रु, क्या मित्र, सबों की वह भलाई चाहने वाला है। वह दिन-रात दूसरों की सेवा में लगा रहता है। वह सदा प्रफुल्ल रहता है, दुःख में भी सुखी रहता है। वह दुःख-सुख को अपने किये हुए कामों का फल समझता है। मृत्यु का भी उसको भय नहीं है। मृत्यु तो उसके 'लिये उन्नति का द्वार है। उसकी नज़र में जीवन एक अपूर्व छटा धारण कर लेता है। जीवन का क्या रहस्य है, क्या मतलब है, यह ब्रह्मज्ञानी ही बतला सकते हैं। निस्सन्देह यह उस एक ईश्वर का भजन ही है, लोक-सेवा ही है। ब्रह्मज्ञान हमें यह बतलाता है कि संसार के दुःख का कारण स्वार्थ-परता है, यह दूर हो सकता है प्रेम और परोपकार ही से। ब्रह्मज्ञानी दूसरों की सेवा में, उनकी भलाई के कामों में, इतना व्यस्त रहते हैं कि उनको अपने सुख की, अपनी स्वार्थ-सिद्धि की, सुधि जाती रहती है।

हम-आप भी यदि चाहें तो ईश्वर की सर्व-व्यापकता, भ्रातृभाव, सब धर्मों की एकता, श्वेत-महामठ और महात्माओं की स्थिति इत्यादि, और पुनर्जन्म और कर्म के नियमों की सत्यता अपने लिये सिद्ध कर सकते हैं; परन्तु इसके लिये आवश्यकता है साधना की, लगातार परिश्रम की, उत्कट तत्परता और उत्साह की। इसी साधना द्वारा हम उपरोक्त श्वेत-महामठ के महात्माओं के शिष्य हो कर मनुष्य की भलाई के लिये विशेष ज्ञान और शक्ति के पात्र बन सकते हैं और उन गुरुदेवों की सहायता से उस परम-पद को प्राप्त कर सकते हैं, जहाँ से हम भगवान् की अपूर्व लीला को अच्छी तरह समझ सकते हैं और जहाँ से मनुष्य-मात्र की भलाई भी विशेष रूप से कर सकते हैं। उस परम-पद के आनन्द का, वहाँ की शान्ति का, अनुभव योगी अपने-अपने ध्यान

में कभी-कभी करते हैं। यह कोई ख़ास स्थान नहीं है। यह एक अवस्था है जिसका अनुभव सब एक-न-एक दिन अवश्य करेंगे—कोई जल्दी, कोई देर से। उस साधना का सविस्तार वर्णन यहाँ पर करना ठीक नहीं है। वह किसी दूसरे लेख में किया जायगा। अभी, यहाँ एक ही बात पर विशेष ध्यान दिया जाय। बहुत ही संक्षेप से वह है भ्रातृ-भाव। यदि हम अपने दैनिक जीवन के प्रत्येक काम को, क्या छोटा, क्या बड़ा, लौकिक या पारलौकिक, सब भ्रातृभाव के सिद्धान्त पर चलाने की कोशिश करें, सब के साथ भाईचारे का बर्ताव करें; क्या अङ्गरेज़, क्या मुसलमान, क्या ब्राह्मण, क्या चाण्डाल, क्या मनुष्य, क्या जानवर, किसी को घृणा की दृष्टि से न देखें; तो हम ऊपर लिखी साधना की कई एक सीढ़ी तै कर चुकेंगे, मुमुक्षु के मार्ग पर बहुत दूर चल चुकेंगे। गीता में भी भगवान् ने इस भाव पर अधिक ज़ोर दिया है। कहा है—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःख-सुखः क्षमी॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मे भक्तः स मे प्रियः॥

अध्याय १२, श्लोक १३-१४।

हम इसी भ्रातृभाव के मन्त्र को ग्रहण करें, इसी का बराबर ख़्याल करते रहें, इसी का ध्यान हमारे लिये पूजा और इसका अनुभव सेवा हो, तो निस्सन्देह स्वर्ग का द्वार बहुत निकट आ जाय—हमारे लिये एवं औरों के लिये भी। परन्तु, सावधान! रास्ता बहुत कठिन है, सुनने में जितना आसान मालूम होता है उतना करने में नहीं। नाना बाधाएँ इस साधना के मार्ग में उपस्थित होंगी। हमारी बहादुरी इसी में है

कि जवाँमर्दी के साथ सबों का सामना करते हुए, रास्ते के सभी संकटों को बरदाश्त करते हुए उत्साह और दृढ़ता से आगे बढ़ते चलें। अपने प्रति दूसरों के घृणा के बर्ताव से हम कदापि विचलित न हों। घृणा का सामना प्रेम से करें, क्योंकि घृणा का नाश घृणा से नहीं, परन्तु प्रेम से ही घृणा का नाश होता है, जैसा भगवान् बुद्ध ने समझाया है। अपने ऊपर कितना हूँ दुःख आने पर भी भ्रातृभाव के मन्त्र को कभी नहीं भूलें। यदि हमने इस मन्त्र को अच्छी तरह ग्रहण कर लिया, तो फिर क्या कहना है? सुख और ज्ञान का द्वार तो खुल ही जाय। साथ ही साथ हम ऋषि-संघ के महात्माओं की कृपा-दृष्टि के पात्र भी बन जाँय और पृथ्वी के पापों का बोझ भी कुछ हलका हो जाय।

ब्रह्मज्ञान क्या है और इसके मूल सिद्धान्त क्या हैं, इनको समझाने की इस पुस्तिका में कोशिश की गई। परन्तु इनकी विशेष जानकारी स्वयं मनन से और इनके सिद्धांतों को काम में लाने से होती है। क्योंकि सच्चा ज्ञान तो मनुष्य को अपने हृदय ही से मिलता है। सब के हृदय में तो "गुरुदेव" हैं ही। मनुष्य का फ़र्ज़ है कि वह उनको खोजे और पहिचाने। दूसरा कोई तो केवल इतना ही कर सकता है कि यदि कोई अज्ञान की नींद में सोया हो, तो वह उसे जगा दे, उठकर चलना तो उसी का काम है।